अध्याय १

तबले का इतिहास

स्वतंत्र तबलावादन में 'गत' रचना की विस्तृत चर्चा करने के पहले तबला वाद्य की मूलभूत जानकारी, तबले की उत्पत्ति एवं स्वतंत्र तबलावादन में प्रयुक्त सभी रचनाओं पर दृष्टिपात करना शोधकर्ता को आवश्यक महसूस हुआ, ताकि इस अध्ययन से स्वतंत्र तबलावादन में 'गत' रचना का महत्त्वपूर्ण स्थान आसानी से ज्ञात हो सके।

व्यवहारिक भाषा में जिन शब्दों का अर्थ नहीं होता, उनका अर्थ संगीत में व्यक्त होता है। संगीत अव्यक्त को व्यक्त करता है। भारतीय संगीत की दो मूलभूत तत्त्व - स्वर और लय। संगीत में स्वर और लय तत्त्व के संयोग से सम्पूर्ण कलाकृति की अनुभूति मिलती है। 'श्रुतिर्माता लयः पिता।' लय को संगीतोपयोगी बनाने हेतु उसे विशिष्ट कालखंड में बद्ध किया गया, जिससे ताल संकल्पना का उगम हुआ।

आदिमानव ने अपने शरीर की गति से छन्द का अंदाज लगाया। पं. निखिल घोष के लेखानुसार ''सदियों के सांगीतिक विकास से ही मानव ने छन्द की अपनी अनुभूति को ताल में परिणत किया। ताल, छन्द का उन्नत रुप है।'' १ पुरातन काल में आदिमानव के लयज्ञान अनुसार भूमि के उपयोग से ग्राऊंड ड्रम्स, स्लीट ड्रम्स; मिट्टी से क्ले ड्रम्स; लकड़ी से डफ; धातु पर चमड़े का आच्छादन डालकर ताशा, नगाड़ा ऐसे कई तालवाद्यों का अस्तित्व था। संस्कृत वाङ्मय के अनुसार नटराज शिव ने तांडव नृत्य करते समय डमरु वाद्य का प्रयोग किया था। वेदकाल में वेदपठन के लयदर्शन हेतु भूमिदुंदुभि इस लयवाद्य का प्रयोग हुआ था। वैदिक वाङ्मय की शुक्लयजुर्वेद संहिता तथा रामायण, महाभारत में मृदंग वाद्य का उल्लेख है।

तबला वाद्य के उद्गम के विषय में कई विद्वानों ने, बुजुर्गों ने संशोधन किया है। परन्तु आज तक कोई प्रमाणित ग्रंथ अथवा तर्कसंगत विधान नहीं मिलता, जिससे तबले का जनक, जन्मकाल, उद्गम आदि के बारे में ठोस जानकारी मिल सके। इस विषय में विद्वानों में काफी मतभेद हैं।

१.१ तबला वाद्य का उद्गम तथा विकास

कई विद्वानों के अनुसार तबला वाद्य विदेशों से भारत में आया है। पं. अरविंद मुळगांवकर के ग्रंथानुसार ''अरेबिया में प्राचीन काल में सैनिकों को उत्तेजन देने के लिए वाद्यों का प्रयोग होता था, उन्हें तबला, नकारा, तबलजंग नाम से पहचाना जाता था। सीरिया की प्राचीन मेसॅपोटेमियन संस्कृति की भाषा में तबला शब्द उपलब्ध है। इन संदर्भों से तबला वाद्य मेसॅपोटेमियन, सीरियन, अरेबियन संस्कृतियों से मुगलों से भारत में आया होगा। सुमेरियन तथा बाबिलोनियन वाङ्मय में 'बलाग' लयवाद्य से तथा पर्शियन वाङ्मय के 'तबल बलादी' 'तबल टर्की' 'तबलजंग' ऐसी कई वाद्यों से तबला वाद्य का सम्बन्ध जुड़ा होगा।''२ (हिन्दी अनुवाद)

धातु और पेड़ों के तने से बने इन वाद्यों पर चमड़ा मढा होता है, लेकिन किसी भी वाद्य पर स्याही के प्रयोग का उल्लेख नहीं मिलता है। स्याही का शास्त्रीय विधिवत लेपन कर चर्मवाद्य को स्वरों का अद्वितीय परिणाम देने का प्रयोग तथा संशोधन निश्चित ही भारत में ही हुआ है। अन्य संस्कृति या देश में स्याही लेपन का उल्लेख तथा सबूत नहीं मिलता है। श्रीमती आबान मिस्त्री के ग्रंथानुसार ''भारत के विभिन्न भागों की गुफाओं तथा मन्दिरों के पुरातन शिल्पो में आधुनिक तबला डग्गा की जोड़ी से मिलती-जुलती तालवाद्यों की मूर्ति एवं भित्ति चित्र मिलते हैं।''३ महाराष्ट्र के लोकसंगीत में 'सम्बल' वाद्य का प्रयोग किया जाता है, जिसकी बनावट तबला वाद्य से मिलती-जुलती है। पंजाब का 'दुक्कड' वाद्य भी तबले के समान दो भागों का होता है। अतः विभिन्न मतों के अनुसार तबला वाद्य महाराष्ट्र के 'सम्बल' तथा पंजाब के 'दुक्कड' वाद्यों का परिष्कृत रूप है। कुछ लोगों के मतानुसार प्राचीन अवनद्ध वाद्य 'दर्दुर' एवं 'नक्कारा' से तबला जोडी का सम्बन्ध है। भरत के नाट्यशास्त्र में 'त्रिपुष्कर' नामक वाद्य के तीन अंग बताए गए हैं – आंकिक, उर्ध्वक, आलिंग्य।

इनमें से तबले का जन्म उर्ध्वक एवं आलिंग्य इन दो अंगों से हुआ ऐसा माना गया है। इससे यह बात स्पष्ट है कि तबला वाद्य भरतकालीन तालवाद्यों से संबंधित है। अतः यह निश्चित है कि तबला पूर्णतः भारतीय वाद्य है।

कई विद्वानों एवं संगीतज्ञों की राय में तबला वाद्य के जनक अमीर खुसरो है। हज़रत अमीर खुसरो ने निःसंदेह अपनी कला कौशल से नये तालों की रचना करके भारतीय संगीत को जरूर समृद्ध किया, किन्तु तबले के अविष्कारक के रूप में इनका उल्लेख नहीं मिलता। ‘‘आचार्य कैलाशचन्द्र देव बृहस्पति ने संगीत चिन्तामणि में लिखा है कि तबला वाद्य के अविष्कार से हज़रत अमीर खुसरो का कोई सम्बन्ध नहीं है।’’[४] केवल नाम साधर्म्य के कारण खुसरो खाँ के बदले अमीर खुसरो को तबला निर्मिति का श्रेय दिया होगा।

तबला वाद्य निर्मिति के संदर्भ में रंजक विधानों से हम परिचित हैं, जैसे कि मृदंग अथवा पखावज़ के दो टुकड़े कर दोनों हाथों से बजा ‘तब बोला’ याने ‘टूटा तब भी बोला’ इसका अपभ्रंश ‘तबला’। लेकिन यह तर्कविसंगत है। पखावज़ वाद्य क्षैतिज रूप में रखकर बजाया जाता है। तबला उर्ध्वमुखी वाद्य है। पखावज़ वाद्य एक ही खोड़ के दोनों बाजूओं पर चमड़े से मढ़ा हुआ वाद्य है। तबला वाद्य लकडी के ढाँचे पर चमड़े से मढ़ा हुआ ‘तबला’ एवं धातु पर चमड़े से मढ़ा हुआ ‘डग्गा’ इन दो भागों से बनने के कारण पखावज़ की तुलना में इसमें नादविविधता अधिक होती है। पखावज़ की दाये पूडी पर मध्यभाग में स्याही एवं बाये पूडी के मध्यभाग में गीले आटे का लेपन किया जाता है। तबले के दाये पूडी पर मध्यभाग में तथा बायें पर किनार के एक बाजू में स्याही होती है। पंजा तथा सभी उँगलियों के एकत्रित आघात से पखावज़ पर जोरदार वादन किया जाता है। पंजा के साथ दोनों हाथों की उँगलियों का अधिक प्रयोग होने के कारण तबलावादन पखावज़ की तुलना में अधिक गतिमान हो सकता है। पखावज़ में तालव्य, कंठ्य, दन्त्य एवं ओष्ठ्य वर्ण होते हैं, बल्कि तबले की भाषा में ओष्ठ्य वर्ण वर्जित हैं। इसी तरह पखावज़ एवं तबला दोनों वाद्यों की वादनपध्दति, तंत्र, रचना इसमें काफी अंतर है।

ख्याल गायकी का प्रचार पंद्रहवी सदी के पूर्व हो चुका था। उस समय तक ध्रुपद-धमार गायन शैली का साथी वाद्य पखावज़ था। धीरे-धीरे ख्याल गायकी की लोकप्रियता बढ़ने लगी। ख्याल-ठुमरी जैसी शृंगारिक तथा मधुर गायन शैली के लिए पखावज़ वाद्य उपयुक्त नहीं था। अतः किसी अन्य वाद्य की आवश्यकता पड़ गई, जो तबले के जन्म और विकास की जननी बनी। ख्याल गायकी के प्रयोग से तबले की प्रगति एवं विकास होता रहा।

उस्ताद सिद्धारखाँ ढाढी के ढाई सौ वर्षों पूर्व तबला अभिजात संगीत में था। लेकिन तबले के विकास में उनका श्रेय अनन्य है। उन्होंने पखावज़ वादनशैली में परिवर्तन कर उसे तबले पर बजाने योग्य बनाया। पं. प्रदीपकुमार रावत के लेखानुसार ''पखावज़ के खुले बोलों को बन्द बोलों में बदल कर तबले पर बजाने योग्य बनाया तथा बायाँ पर आटे की पूलिका हटाकर पक्की स्याही लगा दी। उसके इसी रूप में सुधार लाकर आधुनिक तबले का रूप देकर उसका प्रचार किया और दिल्ली के प्रसिद्ध घराने की नींव डाली।''५

तबला वाद्य केविकास में इस वाद्य की बनावट अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। तबला वाद्य के दो अंग हैं। 'तबला' तथा 'दायाँ' लकड़ी के खोखले से बनता है। इस खोड पर जहाँ चमड़ा मढ़ाया जाता है, उसका नाप तथा चमड़े के बीच में लगाई गई स्याही इन पर तबले का स्वर निर्भर रहता है। खोड का मुख जितना छोटा उतना स्वर उँचा और मुख जितना बड़ा उतना स्वर नीचा होता है। तार षड्ज से मन्द्र षड्ज तक सभी स्वरनिर्मिति तबले में सम्भव हैं। धातु से बना 'डग्गा' तथा 'बायाँ' गुंबदाकार होने के कारण उसमें मन्द्र स्वरों की निर्मिति आसानी से होती है। किनार की ओर लगाई गई स्याही से घुमारा, मींडकाम सुलभ होता है। इस विशिष्ट बनावट से सूक्ष्म तथा मुलायम नादनिर्मिति में सफलता पाकर तबला वाद्य ख्याल गायनशैली के लिए पखावज़ से ज्यादा उपयुक्त हो गया। पं. आमोद दंडगे ने अपने पुस्तक में लिखा है - ''गरज ही शोधाची जननी आहे. ख्याल, नृत्य इ. संगीत प्रकारांसाठी अन्य कोणत्याही चर्मवाद्यापेक्षा तबला वाद्याची निकड भासू लागली. यानंतरच तबल्याचा सर्वांगीण विकास होण्यास सुरवात झाली.''६ ध्रुपद धमार गायन शैली के लिए गंभीर गाढ़ा स्वर निर्माण

करनेवाला पखावज़ वाद्य योग्य था, लेकिन ख्याल जैसी नाजुक गायन शैली के लिए तबला वाद्य अधिक सुयोग्य था। कथ्थक नृत्य के अतीव जलद तत्कार पखावज़ पर बजाना मुश्किल होने के कारण कथ्थक नृत्य के लिए साथी वाद्य के रूप में तबले का प्रयोग होने लगा।

अवनद्ध वाद्यों की भाषा वाद्यसापेक्ष है। वाद्यों की व्यापकता देखना आवश्यक है। उदा. 'धीरधीर' बोल पखावज़ पर एक ही प्रकार से अर्थात् हथेली से बजता है। वही 'धीरधीर' तबले पर दो भिन्न प्रकारों से अर्थात् हथेली से एवं उँगलियों से बज सकता है। इसका कारण बनावट की दृष्टि से तबला वाद्य की व्यापकता महत्तम है। विकसित बनावट के कारण तबले पर खुला तथा बन्द दोनों बाज बजाना सम्भव है।

साथसंगत का प्रमुख वाद्य होने के साथ विभिन्न शैलियों के अर्थात् घरानों के माध्यम से तबले की स्वतंत्रवादन सामग्री का भी विकास हुआ। उ. सिद्धारखाँ दिल्ली के निवासी थे, अतः तबले में उनका घराना 'दिल्ली घराना' नाम से प्रसिद्ध हुआ। उन्होंने तबले को आधुनिक रूप देकर तबले का प्रचार किया और दिल्ली घराने की संस्थापना हुई। उ. सिद्धारखाँ के पौत्र उ. सिताब खाँ । उ. सिताब खाँ के शिष्य मेरठ के दो भाई उ. कल्लू खाँ, उ. मीरु खाँ ने अपने वादनशैली में उल्लेखनीय परिवर्तन कर दिल्ली बाज को नया रूप देकर आगे बढ़ाया। इसी तरह अजराड़ा घराने की उत्पत्ति हो गई। उ. सिद्धारखाँ के पौत्र उ. मोदू खाँ, उ. बख्शू खाँ। इन्होंने मौलिक बाज विकसित कर विख्यात लखनऊ घराने की स्थापना की। उ. मोदू खाँ के शिष्य पं. रामसहाय द्वारा बाज में किया गया परिवर्तन बनारस घराने के नाम से जाना गया। उ. बख्शू खाँ के शागिर्द एवं दामाद फर्रुखाबाद निवासी उ. हाजी विलायत अली खाँ ने फर्रुखाबाद घराने की नयी परम्परा आरम्भ कर दी। मृदंगवादक पं. लाला भवानीदास ने मृदंग वादनशैली के निकास से विकसित स्वतंत्र घराने के रूप में पंजाब घराने की स्थापना की। इसी तरह बन्द बाज में दिल्ली तथा उसका शागिर्द घराना अजराड़ा; खुले बाज में लखनऊ तथा इसके दो शागिर्द घरानें फर्रुखाबाद एवं बनारस और पूरी तरह से स्वतंत्र रूप में खुले बाज का पंजाब घराना प्रस्थापित हुआ।

तबला वाद्य में अन्य अवनद्ध वाद्यों के सभी गुण विद्यमान होने के कारण गायन की सभी विधाओं में, तन्त्रवाद्य एवं नृत्य की संगति में आज तबला अनिवार्य वाद्य बन चुका है। यह निर्विवाद है कि आज की तबला जोड़ी का रूप सदियों की निरन्तर मेहनत तथा परिवर्तनों का प्रतिफल है। दूसरे स्वरप्रधान वाद्यों की तरह तबला भी स्वतंत्र वादन के क्षेत्र में सफलता से विकसित हुआ है। तबलावादन की असंख्य महफिलें, विदेश में तबले का प्रचार, तबले के विविध ग्रंथ, व्याख्यान सेमिनार, वर्कशॉपस्, विद्यापीठों में बी.ए., एम.ए., पी. एच.डी. करने की सुविधा इनका तबले के विकास में महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। इस वाद्य का अनन्यसाधारण महत्त्व, शास्त्रों ने की हुई प्रगति, गुणिजन कलाकारों की असंख्य सुंदर रचनाएँ, घरानों का समृद्ध वाङ्मय इन सभी के कारण उत्तर भारतीय संगीत में तबले को अत्युच्च तालवाद्य का स्थान प्राप्त हुआ है।

१.२ तबले के वर्ण **(Alphabets)**

हर भाषा के अपने मूल वर्ण है। भाषा को लिखित या मौखिक स्वरूप में व्यक्त करने के लिए भाषा की सामग्री आवश्यक है। भाषा में उपयोग किए जानेवाली सामग्री मतलब शब्द, पंक्तियाँ ये मूलवर्णों पर निर्भर है।

मनुष्य द्वारा उच्चारित वर्ण स्पष्ट रूप से तबला वाद्य पर नहीं निकलते हैं एवं तबला वाद्य पर निकलनेवाली ध्वनि मनुष्य अपने मुख से ठीक वैसी की वैसी उच्चारित नहीं कर सकता है। तबले की भाषा सांकेतिक भाषा (Symbolic language) है। अवनद्ध वाद्यों पर निकलनेवाली ध्वनियों को सर्वसामान्य रूप देकर प्राचीन संगीत शास्त्रकारों ने अपनी कल्पनाशक्ति के अनुसार प्रत्येक विशेष प्रकार की ध्वनि को मानव द्वारा उच्चारित स्वर-व्यंजनयुक्त अक्षरों द्वारा प्रतिपादित किया, उन्हें वर्ण अथवा पटाक्षर कहा गया है। संस्कृत शब्द 'पट्ट' (काष्ठपट्ट) शब्द से 'पाट' शब्द आया होगा। इसका मतलब है आसन या बैठक। यह शब्द स्थिरता प्रदान करता है। शोधकर्ता की राय में 'पाट' अर्थात् आसन (Base)। जिस तरह हम पाट (Base) पर आसन ग्रहण करते हैं, ठीक उसी तरह ये स्वर-

व्यंजनयुक्त वर्ण तबला जैसे तालवाद्यों के बोलों एवं रचनाओं का मूलाधार (Base) हैं। इसलिए इन वर्णों को पटाक्षर भी कहा गया है।

डॉ. चिश्ती के ग्रंथानुसार, ''भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में वाद्यवादन हेतु १६ शुध्द एवं १६ कूट वर्ण मिलाकर ३२ पाटवर्णों का उल्लेख है। शुध्द तथा कूट वर्णों के सहयोग से निर्मित वर्ग को 'खण्ड वर्ण' कहा है। शारंगदेव ने केवल मृदंग पर बजनेवाले पाटवर्ण बताए हैं। 'संगीत रत्नाकर' में वाद्यों पर प्रयुक्त पाट रचनाओं का निरूपण किया गया है। 'संगीतोपनिषत्सारोद्धार' में तालों के साथ पाट देने की परम्परा सर्वप्रथम दिखाई देती है। वर्णों के बारे में एक लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि ब्रह्माजी के मुख से 'ता', पश्चिम मुख से 'दी', उत्तर मुख से 'थुं' तथा दक्षिण मुख से 'न' ये चार वर्ण प्रकट हुए, जो 'चौमुखा' नाम से प्रसिद्ध हुए। कालान्तर के बाद इन्हीं चारों के आधार पर इनसे संबंधित अन्य वर्ण भी हुए। इन चार वर्णों का आदिताल (त्रिताल) में स्वयं उद्भव हुआ है।'' ७

''इमाम नामक अमेरिकन कलाकार की पुस्तक 'ए कम्पोजिशनल डॉक्यूमेंटेशन, देहली घराना ऑफ तबला' के अनुसार दिल्ली घराने के उ. गामी खाँ के पौत्र उस्ताद गुलाम हैदर से तबले के वर्णों की भाषा पर चर्चा की गई है, जिसका अंग्रेजी में अनुवाद लावेल लइबरजर ने किया।'' ८

१.२.१ वर्णों की परिभाषा

''तबले पर अलग अलग उँगलियों से विभिन्न स्थानों पर भिन्न भिन्न आघात करके जो विविध प्रकार के इकहरे और संयुक्त नाद निर्माण किए जाते हैं, उन्हें तबले के मूल वर्ण (मूलाक्षर) कहा जाता हैं।'' ९

''तबले पर बजनेवाले वर्ण, 'अक्षर' 'पटाक्षर' या 'Alphabet' कहलाते हैं, वे सभी घरानों एवं बाजों में एक समान ही होते हैं।'' १०

''प्राचीन काल में ताल वाद्यों पर बजनेवाले वर्णाक्षरों की संज्ञा 'पाट' थी।'' ११

''पाट + अक्षर के समन्वय से पाटाक्षर शब्द बना है। अवनद्ध वाद्यों पर निकलनेवाली विभिन्न ध्वनियों को निश्चित रूप से समझने के लिए या विभिन्न उच्चारित वर्णों से स्पष्ट करने के लिए जिन वर्णों (स्वर + व्यंजन) का प्रयोग किया जाता है, उन्हें 'पाटाक्षर', 'पाट-वर्ण' या केवल 'वर्ण' कहते हैं।'' १२

''तबला, पखावज आदि वाद्यों पर हस्त-पाटों द्वारा उत्पन्न ध्वनियों के जो संकेत वादन अक्षर हैं, उन्हें वर्ण कहते हैं।'' १३

उपरनिर्दिष्ट वर्णों की कई परिभाषाओं का अध्ययन कर वर्ण के संदर्भ में शोधकर्ती के विचार आगे प्रस्तुत है।

''वाणी तथा विशिष्ट क्रियाद्वारा निर्माण होनेवाली ध्वनि का दृष्य प्रतिनिधित्व करनेवाले लघुत्तम ध्वनि एकक को 'वर्ण' कहते है।'' इन्हीं वर्णों मे से तबले में प्रयुक्त होनेवाले वर्ण तथा वर्णसमूह को 'बोल' कहते है। तबले के अपने वर्ण हैं, जिन्हें संयुक्त कर विभिन्न प्रकार के बोलों की रचना हुई है।

साधन चाहे जैविक (निसर्गतः प्राप्त) हो या अर्जित (खुद ने सिखा तथा कमाया हुआ) हो, उसमें से कोई न कोई स्वरूप की ध्वनि निर्माण होती है। तबला, बासरी कौनसा भी वाद्य हो, उसमें विविध ध्वनि उत्पन्न होने के लिए विविध ध्वनिस्थानों की जरूरत है।

वर्णोच्चार करते समय मुँह की हलचल (वाणी) तथा बजाते समय उँगलियों की हलचल दिखाई देती है। अगर दृष्य हलचल न कहें तो दूर से सुनाई देनेवाली समुंदर की गाज़ को हम वर्ण कहते। इसलिए क्रिया के बगैर वर्ण नहीं उत्पन्न होते। रिकार्डिंग सुनते समय दृष्य हलचल अपेक्षित नहीं क्योंकि रिकार्डिंग के पूर्व कृति हो चुकी होती है। जब पुस्तक पढ़ते हैं, तब लिखना शुरु नहीं रहता है। पुस्तक लिखने की कृति तो पहले ही हो चुकी होती है।

वर्ण पहले वाणी से संबंधित हैं और बाद में तबले से, फिर भी क्रिया के बगैरे वर्ण नहीं उत्पन्न होते। तबले के 'ट्' वर्ण को आस नहीं है, इसका मतलब यह लघुत्तम एकक है। 'धा' वर्ण को आस है लेकिन द्रुत लय में 'धा' आसयुक्त नहीं अर्थात् द्रुत में लघुत्तम है। द्रुत में 'धाधिंधिंधा' का प्रयोग करते समय 'धा' आसयुक्त नहीं रहता मतलब अनुरणन न होते हुए भी इसे हम 'धा' ही कहते हैं।

व्यवहारिक भाषा का 'न' वर्ण तथा तबले का 'न' वर्ण लिखने-बोलने में तो एक ही है। परन्तु तबले की भाषा चेतना (Feeling) की है। गाना सुनने के समय जिनको रागदारी का अच्छा ज्ञान हो, वे नोटेशन कर सकते हैं, लेकिन गाने का आनंद लेने के लिए नोटेशन मालूम होने की जरूरत नहीं बल्कि चेतना (Feeling) चाहिए। तबले के वर्णों के सन्दर्भ में ऐसा ही है। फर्क इतना है कि इस भाषा में वाणी के बदले हाथ तथा तबला है।

१.२.२ वर्णों के प्रकार

तबले के वर्णों के विभिन्न प्रकार हैं। उनकी जानकारी निम्नलिखित तीन घटकों के आधार पर दी है।

१) स्वरमय-व्यंजनमय वर्ण

२) वाणी पर निर्धारित वर्ण

३) वादन पर निर्धारित वर्ण

१.२.२.१ स्वरमय – व्यंजनमय वर्ण

साहित्य तथा संगीत दोनों में दो प्रकार के वर्ण हैं - स्वर और व्यंजन। व्यवहारिक भाषा में स्वर स्वयंभू संपूर्ण वर्ण है एवं व्यंजन को स्वर का आधार लेकर पूर्णत्व प्राप्त होता है। व्यवहारिक भाषा के स्वर-व्यंजन और तबले की भाषा के स्वर-व्यंजन में फर्क है।

स्वर : तबला भाषा के संदर्भ में आघात या क्रिया के बाद अनुरणन (Resonance) स्वरूप में अस्तित्व दर्शानेवाला वर्ण 'स्वर' है। उदा. 'धा' बजाने के बाद तुरन्त समाप्त नहीं होता है। उसका अनुरणन सुनाई देता है।

व्यंजन : आघात या क्रिया तक ही अस्तित्व दर्शानेवाला वर्ण 'व्यंजन' है। उदा. स्याही पर 'ती' बजाया तो तुरन्त समाप्त होता है। यहाँ अनुरणन नहीं है।

पं. अरविंद मुळगांवकर के अनुसार ''तबले के मूलाक्षरों की (व्यंजनों की) योजना भारतीय स्वरसप्तक पर आधारित होने के कारण उनकी संख्या सात बताई है। क्,ग्/घ्, त्, द्/ड्, न्, ट्, र्। सुलभ उच्चारण तथा ध्वन्यनुरूप होने के लिए अ, आ, इ, ई और ए इन स्वरों का पूर्णाक्षर बनाने के लिए उपयोग किया।''१४

१.२.२.२ वाणी पर निर्धारित वर्ण

मृदंग/पखावज़ की भाषा पर आधारित तबले की भाषा अनेक स्थित्यंतरों से मृदंग की भाषा से अधिक प्रगल्भ हुई। असंख्य प्रतिभासंपन्न कलाकारों ने इस भाषा को सुंदर काव्यात्मक रूप देकर समृध्द किया है। तबले में तालव्य, कंठ्य, दन्त्य, मूर्धन्य, कंठ्य-तालव्य व्यंजनों का प्रयोग कर क्,ग्, घ्, त्, द्, ध्, न्, ट्, ड्, र् इन दस व्यंजनों का और अ, आ, इ, ई, ए, इन पाँच स्वरों का उपयोग तबले की बोली में किया गया है।

कंठ्य स्वर - अ, आ

तालव्य स्वर - इ, ई

कंठ्य -तालव्य स्वर - ए

कंठ्य व्यंजन - क्,ग्, घ्

दन्त्य व्यंजन – त्, द्, ध्, न

मूर्धन्य व्यंजन – ट्, ड्, र्

तबले के कंठ्य, तालव्य, दन्त्य, मूर्धन्य वर्णों का उगम ढूंढना है, जिसमें से तबले में स्वर-व्यंजनयुक्त वर्ण लिए गए हैं। उदा. तबले में ‘क्’ व्यंजन + ‘इ’ स्वर = ‘कि’ बायें का व्यंजनवर्ण, ‘धातीत्’ इस बोल में ‘ध्’ + ‘आ’ = ‘धा’ दायें के किनार या लव पर साथ ही साथ बायें के लव पर खुला बजनेवाला दायें-बायें का स्वरवर्ण है, लेकिन ‘त्’ + ‘ई’ = ‘ती’ स्याही पर बजनेवाला दायें का व्यंजनवर्ण है। इसका मतलब तबले में अभिप्रेत स्वर-व्यंजन व्यवहारिक भाषा से अलग हैं। ‘धिनागिना’ में ‘ध्’ + ‘इ’ = ‘धि’ स्वर है, ‘धिंनागिंना’ में ‘धिं’ स्वर है, लेकिन ‘ध्’ + ‘इं’= ‘धिं’ ऐसे नहीं हो सकता है क्योंकि व्यवहारिक भाषा में ‘इं’ ऐसा स्वरवर्ण नहीं है। इधर ‘धि’ और ‘धिं’ दोनों का आघातस्थान एक ही है, परन्तु ‘धि’ की पढन्त बन्द तथा ‘धिं’ की पढन्त खुली अर्थात् क्रमशः अनुस्वार रहित और अनुस्वार सहित है। धीमी लय में झपताल की पढन्त ‘धीं ना धीं धीं ना तीं ना धीं धीं ना’ इस प्रकार होती है, लेकिन यह पढन्त द्रुत लय में ‘धी ना धी धी ना ती ना धी धी ना’ ऐसी हो जाती है, अनुस्वार लुप्त होता है। इसका मतलब ऐसा तो नहीं है कि धीमी लय में ‘धिं’ स्वर और द्रुत लय में ‘धि’ व्यंजन है, बल्कि दोनों स्वर ही है। यह कहना है कि तबले के वर्णो का वाणी से संबंध है एवं इनका वर्गीकरण लयसापेक्ष भी है।

पं. गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव के अनुसार ‘‘आ -यह देवनागरी वर्ण -माला का दूसरा स्वर वर्ण है, जो ‘अ’ का दीर्घ रूप है। तबला पखावज़ आदि की रचनाओं की पढ़न्त में ठहराव या विराम के स्थान को ‘आ’ के उच्चारण से पूरा करने की पद्धति प्रचलित है।’’१५

वादन तथा वाणी अनुकूल बनाने हेतु एक ही शब्द की पढन्त और बजन्त में अन्तर दिखाई देता है। जैसे कि अगर पढन्त ‘धिकीट’ हो, तो बजन्त ‘धितीट’ ऐसी होती है।

कई अक्षरों के बारे में यह भी प्रतीत होता है कि एक ही अक्षर दो अलग-अलग शब्दों के लिए भिन्न निकास से बजाया जाता है। उदा. ‘तिट’ तथा ‘तिरकिट’ दोनों शब्दों में ‘ट’ वर्ण का उच्चार (वाणी) एक है परन्तु ‘ट’ दो भिन्न प्रकारों से बजता है। इधर ‘ट’ की दो अलग व्यक्तित्व है।

सभी को ज्ञात है कि तबले पर दो भिन्न बाजों का वादन प्रभावशाली रूप से होता है। इसलिए आम तौर पर तबले में लगभग सभी वर्ण दो विभिन्न निकासों से बजाए जाते हैं।

अक्षरों से (वर्णों से) ही तबले की खाली-भरी सिद्ध होती है, इसी कारण विस्तारक्षम रचनाओं का उद्‌गम हुआ, जो तबले का सबसे महत्त्वपूर्ण विकास है।

१.२.२.३ वादन पर निर्धारित वर्ण

उत्तर हिंदुस्तानी संगीत में प्रयुक्त मृदंग या पखावज़ में दायें मुख पर बजनेवाले पाँच वर्ण ‘ता’, ‘दी’, ‘ना’, ‘ते’, ‘टे’ तथा बायें मुख पर बजनेवाले दो वर्ण ‘ग’/‘घ’, ‘क’ ऐसे कुल सात वर्ण बताए हैं। मृदंग के वर्णों पर आधारित तबले के मूल वर्णों की संख्या दस मानी गई है।

‘‘तबले के दस वर्ण हैं, गुनिजन कहत बखान।
बाजत छः दायें दो बायें, दो मिश्रित कर जान।।
दायें पर दिं ता ति ट तू ना, बायें क ग मान।
धा धिं बजत न एक हाथ, दोनों लगत समान।।’’ १६

हजरत अमीर खुसरों ने तबले के दस वर्ण बताए हैं। ये वर्ण तीन हिस्सों में विभाजित किए हैं - दाहिने हाथ के वर्ण, बायें हाथ के वर्ण, दोनों हाथ मिलकर बजनेवाले वर्ण। इन दस वर्णों को मिलाकर और भी बहुत सारे बोल बनाए गए हैं। सभी बोलों का दो हिस्सों में विभाजन हुआ – खुले बोल और बन्द बोल।

१.२.३ वर्णों की निकास

‘निकास’ याने निकालने का तरीका। तबले की भाषा में ‘निकास’ का अर्थ है, दायाँ-बायाँ से विविध वर्ण निर्माण करने का तरीका तथा बजाने की विशिष्ट रीति, बोल निकालने की विधि। पं. आमोद दंडगे के अनुसार निकास की परिभाषा-‘‘दायाँ-बायाँतून विशिष्ट ध्वनी निर्माण करण्याकरिता व त्यामधून आवश्यक त्या दर्जाचा श्राव्यानुभव निर्माण करण्याकरिता बोटांचा स्वतंत्र

अथवा एकत्रित वापर करून अथवा पंजाच्या साहाय्याने दायाँ-बायाँवर जो शास्त्रशुद्ध आघात केला जातो त्यास 'निकास' म्हणतात.''१७

वर्णों के निकास की चर्चा करने से पहले तबले के अंगों पर संक्षिप्त प्रकाश डालना आवश्यक है। तबले के मुख्यतः दो भाग है - १) तबला/दायाँ २) डग्गा/बायाँ

तबले/दायें का ढाँचा खैर/शीशम/बीजैसार जैसी लकडी से बनता है और अंदर से खोखला होता है। इसके मुख पर चमड़ा मढ़ाया जाता है। उँचे स्वर का तबला छोटे मुख का और मन्द्र स्वर का तबला बडे मुख का होता है। धातू से बना हुआ डग्गा/बायें का ढाँचा गुंबदाकार और अंदर से खोखला होता है।

पूडी :- दायाँ-बायाँ के मुख पर चमड़े से मढ़ा हुआ पूर्ण भाग जिसमें गजरा, चाट, लव, स्याही, मैदान अन्तर्भूत हैं और जिस पर वादन करके ध्वनि उत्पन्न की जाती है।

तबला (दायाँ) की पूडी पर बोल निकालने की तीन जगह :- किनार/चाट, लव, स्याही।

डग्गा (बायाँ) की पूडी पर बोल निकालने की चार जगह :- किनार, लव, स्याही, मैदान।

दायाँ-बायाँ की पूडी के भागों का वर्णन -

चाट/चाटी/किनार :- दायाँ-बायाँ की पूडी के किनारे गजरे के पास लगभग दो सें. मी. चौड़ी चमड़े की गोलाकार पट्टी।

लव :- तबले की किनार एवं स्याही के बीच का गोलाकार चमड़े का भाग। डग्गा तथा बायाँ की स्याही और किनार के बीच का छोटा चमड़े का भाग।

मैदान :- डग्गा तथा बायाँ की स्याही और किनार के बीच का बड़ा चमड़े का भाग।

स्याही :- तबले की पूडी के बीच समकेंद्रित स्वरूप में बिठाया गया काला गोलाकार, उभरा (bulgy) भाग जो लोहचूर्ण, कोयले की पाउडर और गीले चावल की लेइ (खळ) इनके मिश्रण से बनाया जाता है। स्याही के कारण तबले में आसयुक्त स्वरनिर्मिति होती है। तबले (दायें) की पूडी के मध्यभाग में स्याही होती है, बल्कि बायें की स्याही किनार के एक बाजू में होती है।

दायाँ-बायाँ के इन्हीं स्थानों पर आघातद्वारा विविध वर्ण निर्माण किए जाते हैं।

तबला तथा दायाँ पर बजनेवाले वर्णों की निकास विधि -

१. **ना/ता/न** :- अनामिका एवं करांगुली स्याही पर रखकर दाहिने तर्जनी से तबले की चाट पर खुला गूँजयुक्त आघात करके 'ना/ता/न' वर्ण निकलते हैं। उदा. - गिना, तातीट, घिनतिट यह आघात चाट के बदले लव पर करने से पूरब बाज का खुला 'ना/ता/न' वर्ण निकलते हैं। उदा. - घिना, कता, घिडनग

२. **न** :- दाहिने अनामिका से स्याही पर हल्कासा आघात करके 'न' वर्ण बजता है। उदा. – घिनतूना
यह आघात मध्यमा, अनामिका, करांगुली से किया तो पूरब बाज का 'न' वर्ण बजता है। उदा. दिंगदिनागिन

३. **त** :- दाहिने मध्यमा, अनामिका, करांगुली से स्याही पर बन्द आघात करके 'त' वर्ण निकाला जाता है। उदा. कत

दाहिने तर्जनी से स्याही पर बन्द आघात करके 'त' वर्ण निकाला जाता है। उदा. घिटतक

४. **ड** :- दाहिने मध्यमा, अनामिका, करांगुली से स्याही पर विशिष्ट बन्द आघात, यह 'ड' वर्ण का निकास है। उदा. घिडनग

५. **ति** :- स्याही के बीच दाहिने मध्यमा से बन्द आघात किया, तो 'ति' वर्ण निकलता है। उदा. तिट

यह आघात मध्यमा, अनामिका, करांगुली से एकत्रित किया तो पूरब बाज का 'ति' वर्ण निकलता है। उदा. क्डधातिट

६. **ट/र** :- स्याही के बीच दाहिने तर्जनी से बन्द आघात करके 'ट/र' निकाले जाते हैं। उदा. तिट, तिर

७. **र** :- दाहिने हाथ की हथेली से ऊपर की दिशा में स्याही पर दायी ओर बन्द आघात करके 'र' वर्ण बजता है। उदा. धीर्धीर

८. **तू** :- स्याही पर दाहिनी तरफ दाहिनी तर्जनी से तिरछा गूँजयुक्त आघात करके 'तू' वर्ण निकाला जाता है। उदा. धातूना

९. **डा** :- दाहिने तर्जनी से लव पर खुला गूँजयुक्त आघात, यह 'डा' वर्ण का निकास है। । उदा. घिडान

१०. **दी** :- दाहिने हाथ की सभी उँगलियाँ अर्थात् अंगूठा, तर्जनी, मध्यमा, अनामिका, करांगुली एकत्रित करके स्याही के बीच हल्का आघात करते ही उँगलियाँ उठाई तो 'दी' वर्ण निकलता है। उदा. गदीगन

११. **तेत्** :- दाहिनें हाथ की मध्यमा, अनामिका, करांगुली से स्याही की बायी ओर टेढा बन्द आघात करके 'तेत्' बजता है। उदा. किटतक तेत्

डग्गा तथा बायाँ पर बजनेवाले वर्णों की निकास विधि-

१. **ग/गि/गे/घे/घि** :- बाये हाथ की तर्जनी/मध्यमा से बायाँ की लव पर खुला आघात करके 'ग/गि/गे/घे/घि' वर्ण निकाले जाते हैं। उदा. धाग, धागिन, धागे, घेघे, घिन

२. **क/कि/के** :- बाये हाथ की सभी उँगलियाँ याने अंगूठा, तर्जनी, मध्यमा, अनामिका, करांगुली इन उँगलियों से अर्थात् पंजे से किनार पर बन्द आघात किया, तो 'क/कि/के' वर्ण बजते हैं। उदा. कत, किटतक, केकेनाना

३. **कत्** :- बाये हाथ की सभी उँगलियाँ याने अंगूठा, तर्जनी, मध्यमा, अनामिका, करांगुली इन उँगलियों से अर्थात् पंजे से किनार पर/स्याही के मध्य पर बन्द आघात यह 'कत्' का निकास है। उदा. धीरधीरकत्

तबला (दायाँ) एवं डग्गा (बायाँ) दोनों पर बजनेवाले संयुक्त वर्णों की निकास विधि -

१. **धा** :- अनामिका एवं करांगुली स्याही पर रखकर दाहिने तर्जनी से तबले की चाट पर खुला गूँजयुक्त आघात, साथ में बाये हाथ की तर्जनी/मध्यमा से बायाँ की लव पर खुला आघात करके 'धा' वर्ण निकाला जाता है। उदा. धागे

२. **धीं** :- अनामिका एवं करांगुली स्याही पर रखकर दाहिने तर्जनी से तबले की लव पर खुला गूँजयुक्त आघात, साथ में बाये हाथ की तर्जनी/मध्यमा से बायाँ की लव पर खुला आघात करके 'धीं' वर्ण बजाया जाता है। उदा. नाधींधींना

३. **तिं/तू** :- स्याही की दायीं ओर दाहिनी तर्जनी ऊपर उठाकर तबले की स्याही पर दाहिनी तरफ तिरछा, गूँजयुक्त खुला आघात, साथ में हाथ की सभी उँगलियाँ अर्थात् अंगूठा, तर्जनी, मध्यमा, अनामिका, करांगुली इन उँगलियों से बायाँ की किनार पर एकत्रित बन्द आघात किया, तो 'तिं/तू' वर्ण बजते हैं। उदा. तिंना, तूना

४. **क्डान्** :-अनामिका एवं करांगुली स्याही पर रखकर दाहिनी तर्जनी से तबले की लव पर खुला आघात, साथ में बाये हाथ की सभी उँगलियाँ अर्थात् अंगूठा, तर्जनी, मध्यमा, अनामिका, करांगुली इन उँगलियों से बायाँ की स्याही के मध्य पर एकत्रित बन्द आघात, यह 'क्डान्' वर्ण का निकास है।

५. **धेत्** :- दाहिने हाथ की मध्यमा, अनामिका, करांगुली इन उँगलियों से तबले की स्याही की बायीं ओर टेढा बन्द आघात, साथ में बाये हाथ की तर्जनी/मध्यमा से बायाँ की लव पर खुला आघात करके 'धेत्' वर्ण निकाला जाता है।

पं. सुधीर माईणकर के अनुसार 'निकास' का स्पष्टीकरण - ''अलग-अलग उँगलियों से, विभिन्न स्थानोंपर, विविध वजनों से जो नाद पैदा होते हैं उन नादों के माधुर्य को जानकर या अनुभूत करके विचारवान वादक कलाकारों ने उँगलियों के लिए विविध क्रियाएँ विकसित कीं। इन उँगलियों की निर्धारित क्रियाओं को 'निकास' की संज्ञा प्राप्त हुई। दायाँ-बायाँ पर का निकास अलग, सशक्त रूप में बजाए जानेवाले अक्षरों का निकास अलग, तो नजाकत के साथ किनार पर बजाए जानेवाले अक्षरों का निकास अलग। मंद गति से बजाए जानेवाले अक्षरों का निकास अलग, तो द्रुत गति से बजाए जानेवाले उन्हीं अक्षरों का निकास अलग।''१८

दायाँ-बायाँ के बोलों के विभिन्न १६ निकास अंग हैं।

बायाँ के निकास अंग :- घुमारा, घुमक, घिस्सा, मींड, दाब, उधार, थाप, इषारा।

दायाँ के निकास अंग : - चाट, थाप, सूर, बंद, चपकी, आस, जर्ब, रौ।

विभिन्न घरानों की वादन परम्परा तथा विशेषताओं के अनुसार वर्णों के निकास विधि में अन्तर आता है। निकास प्रमुख रूप से बाज, घरानें, स्वतंत्र वादन की विविध संकल्पनाएँ, गति (Speed) इन सभी के अनुसार बदल सकते हैं।

डॉ. आबान ई. मिस्त्री के अनुसार ''सभी घरानों में धा को धा और धिं को धिं ही कहते हैं परन्तु विभिन्न घरानों में उनके निकालने की विधि में थोड़ा थोड़ा अन्तर होता है। प्रत्येक घराने में कुछ विशेष प्रकार की मौलिक रचनाएँ भी हुई और घराने के कर्णधार विद्वानों ने बन्दिशों के निकालने की विधि (Sound Production) में परिवर्तन किए। इसी से विभिन्न घरानें अलग-अलग अस्तित्व में आए और उनकी पहचान बनी।''१९

बन्द और खुले बाजों के कारण तबले में नादविविधता निर्माण हुई। दोनों बाजों में वर्ण समान हैं, लेकिन श्राव्यानुभव भिन्न है। एक ही शब्द का प्रयोग बन्द बाज में विस्तारक्षम रचनाओं में और खुले बाज में पूर्वसंकल्पित रचनाओं में अधिक मात्रा में किया जाता है। उदा. बन्द बाज में 'तिट' शब्द दिल्ली घराने के कायदों का प्राण है, वही 'तिट' का प्रयोग खुले बाज के लखनऊ घराने के परनों

में ज़्यादातर किया जाता है। अत: एक शब्द से दो भिन्न नादसौंदर्य एवं परिणाम विभिन्न निकासों से ही सम्भव होते हैं। बोलसमूहों का वादन करते समय सुलभता तथा आवश्यकता के अनुसार निकास में भिन्नता होती है। कुछ बोलों की पढन्त (वाणी) और बजन्त (वादन) में फर्क होता है।

पढन्त	बजन्त
धिकिट	धितीट
धिरधिर	धिरतिर
गदिगन	गदिकन
धुमकिट	गदितिट
तकिटतका	कतीटकता
तक्काथूंगा	कत्ताधेत्ता

पढन्त 'गदिगन' की बजन्त 'गदिकन' तथा पढन्त 'धीरधीरकिटतक' की बजन्त 'धीरतीरकिटतक' होती है। इसकी कारणमीमांसा में यह कहना है कि तबले का जनक वाद्य पखावज़ है। उसमें बायें के निकास केवल पंजे से नहीं बल्कि थाप से बन्द होते हैं। ऐसे में 'गदिगन' शब्द बजाते समय एक 'ग' खुला बजाया तो दूसरा 'ग' खुला नहीं बजेगा क्योंकि इसमें नादमय वैविध्य नहीं मिलेगा, इसलिए 'गदिकन' ऐसा बजाया जाता है। तबले के वर्णों में ओष्ठ्य व्यंजन न होते हुए भी तबले की रचनाओं में 'धुमकिट' अथवा 'थूं' जैसे बोलों का अंतर्भाव होने का कारण लखनऊ जैसे घरानों पर हुआ पखावज की रचनाओं का असर। फर्रुखाबाद घराने के संस्थापक उ. हाजी विलायत अली खाँसाहब की तालीम लखनऊ के उ. बख्शू खाँ के पास होने के कारण उनकी बन्दिशों पर लखनऊ का प्रभाव है।

कभी एक ही अक्षर दो अलग-अलग शब्दों के लिए भिन्न निकास से बजाया जाता है। उदा. 'तिरकिट' एवं 'धात्रकधिकिट' इन दो शब्दों में 'कि' वर्ण एक ही है परन्तु उन्हें निकालने की विधि

में अन्तर है तथा ध्वनिस्थान भी अलग हैं। 'न' वर्ण कभी किनार पर (उदा. घिना धागिन्) तो कभी अनामिका से स्याही पर (उदा. दिंगदिनागिन्) बजता है। ये निकासस्थानों का ज्ञान तालीम से ही समझता है। किन्तु आजकल निकास की सुलभता के लिए किनार पर बजनेवाला वह 'ना' बोल तथा अनामिका से स्याही पर बजनेवाला वह 'न' बोल ऐसा समीकरण हुआ है। एक बात है कि दिल्ली की तुलना में अजराड़ा घराना ने विशेष रूप से 'न' के संदर्भ में किनार का वादन कम कर अनामिका से स्याही पर बजाने का प्रावधान किया है।

एक ही शब्द में एक वर्ण दो बार पुनरावृत्त हुआ, तो उन दोनों के निकास उस वर्ण के पूर्व जो अक्षर है उस पर निर्भर होते हैं। उदा. 'धिन्गिन्' इस शब्द में दो बार 'न' वर्ण है लेकिन उन दोनों के ध्वनिस्थान और निकास भिन्न हैं। इसके ठीक उलट, दो भिन्न वर्णों के ध्वनिस्थान एवं निकास विधि समान होते हैं। उदा. 'ना' और 'ता' इन दो भिन्न वर्णों की निकासविधि समान है। 'तिरकिट' बोल बजाते समय 'ति' और 'ट' इन दो भिन्न वर्णों का निकास समान है।

सारांश, तबलावादन में वर्णों की निकास पर ध्यान देना जरूरी है। निकास के बगैर तबलावादन में केवल विविध नादध्वनियों की निर्मिति हो सकेगी परन्तु उनमें सांगीतिक अर्थ और काव्यात्मक सौंदर्य नहीं होगा। वादन रसपूर्ण होने के लिए निकास का प्रयोजन महत्वपूर्ण है।

१.२.४ वर्णों की उपादेयता

उपादेयता अर्थात् व्यवहार्यता/उपयोगिता। 'किसी बात/चीज का केवल उपयोग होना' और 'ऐसा उपयोग होना कि जिसके बिना वो बात/चीज केवल असम्भव है' - ये दो अलग विधान हैं। उत्तर भारतीय संगीत पद्धति में ठेके को लय का तानपुरा माना है। वर्णों के सिवा ठेका ही नहीं बन सकता है। इसी कारण तबले का सोलो वादन अथवा साथसंगत वर्णों के बिना केवल असम्भव है। व्यवहारिक भाषा में केवल वर्ण को अर्थ नहीं होता है लेकिन जब अनेक वर्ण मिलकर शब्द बनता है, तो उसे अर्थ प्राप्त होता है। तबले के बोलों का व्यवहारिक भाषा के शब्दों से संबंध नहीं होता है बल्कि वर्णों से संबंध होता है। वर्णों की उपादेयता ध्यान में लेकर संस्कृत भाषा से कुछ वर्णों को

त्याज्य कर चयनित वर्णों का समावेश तबले की भाषा में किया गया। इसमें शास्त्रकारों ने इधर भी ध्यान दिया है कि पढ़न्त वाणीसुलभ एवं बजन्त वादनसुलभ हो सकें। रचनाओं की प्रतिदीप्ति (प्रवाह) संभालने या कायम रखने के लिए वाणी अथवा वादनानुकूल समुचित बोलजंत्री का निर्माण किया गया। उदा. 'धाधातीट धाधातींना' में 'ना' और तीनताल के ठेके के 'धातींतींता' में 'ता' किनार पर बजनेवाले बोल होने के बावजूद भी हम 'धाधातीट धाधातींता' नहीं कहते वैसे ही 'धिनागिना' कहते हैं, 'धितागिता' नहीं। यह है बोलों की जंत्री। तबले की भाषा अथवा ताल, वादनानुकूल एवं श्राव्यद् रीति से प्रकट होने हेतु वर्णों का प्रयोग किया गया। तबले की भाषा में आघात के बाद श्राव्य अस्तित्व दिखाता है, वह स्वर और केवल आघात के क्षण तक अस्तित्व दिखाता है, वह व्यंजन। व्यवहारिक भाषा और तबले की भाषा में यही प्रमुख अन्तर है। वर्णों का विभाजन बताने के लिए लय का आधार लिया गया क्योंकि तबले का प्रकटीकरण लय के आधार पर है। विलम्बित लय में वर्णों का प्रयोग करते समय ज़्यादातर स्वरमय बोलों का उपयोग किया गया और व्यंजनमय बोलों को सप्रयोजन छोड़ दिया गया। प्रकृति के अनुसार कायदा यह पेशकार और रेला इनके बीच की संकल्पना है। कायदे के वर्णों में स्वर एवं व्यंजन का संतुलन होता है। रेला द्रुत लय में बजनेवाला रचनाप्रकार है, इसलिए रेले के वर्णों में स्वर को अस्तित्व देने का अवसर कम है। गत, टुकडा जैसी पूर्वसंकल्पित रचनाओं में बन्दिश के अनुसार स्वरवर्ण तथा व्यंजनवर्ण दोनों का प्रयोग होता है।

१.२.५ वादन में प्रयुक्त वर्ण

तबलावादन में गूँजयुक्त (खुले) एवं गूँजरहित (बन्द) ध्वनियों द्वारा विविध वर्ण प्रयुक्त हैं। दायें पर, बायें पर अथवा दोनों पर संयुक्त रीति से गूँजयुक्त ध्वनि निकालने से स्वरमय वर्ण निर्माण होते हैं। उदा. ना, ता, तिं, गे, घे, धा, धिं इत्यादि। इन स्वरमय वर्णों को एकत्रित कर बने हुए स्वरमय वर्णसमूहों का अथवा शब्दों का वादन में प्रयोग किया जाता है। उदा. धिंना, तिंना, धिन, गिन, धागेन, धागे, घेघे, नाना इत्यादि। व्यवहारिक भाषा में वाक्य पूर्ण होने के लिए क्रियापद की जरूरत होती है। क्रियापद के बिना वाक्य अधूरा रहता है। तबलावादन में भी पेशकार, कायदा जैसी रचनाओं

के अन्त में ऐसे शब्द आते हैं। उदा. धाधाधिंना, धाधातिंना, धिनागिना, तिनागिना, दिनागिन, धागेधिनागिना, धागेनतिनागिन इत्यादि, जिनसे इन रचनाओं को पूर्णत्व प्राप्त होता है। पेशकार, कायदे की वाक्यरचना में ये शब्द क्रियापद का काम करते हैं। उदा. 'धिंऽक्डधिंधा क्डऽधाधींना धातीत् धातीत् (धाधातींना)', 'धाधातीट धाधातींना तातातीट (धाधाधींना)', 'धातिटधा तिटधाधा तिटधागे तिनागिना तातिटता तिटधाधा तिट (धागे धिनागिना)' तो इसी तरह रचनाओं के अन्त के ये वर्णसमूहों से अर्थात् स्वरमय क्रियापदों से पेशकार, कायदा जैसी रचनाओं को पूर्णता मिलती है।

दायें पर, बायें पर अथवा दोनों पर संयुक्त रीति से गूँजरहित ध्वनि निकाल कर व्यंजनमय वर्ण निर्माण होते हैं। उदा. त, ति, र, ट, त्र, धि, क, कि, कत्, के इत्यादि। इन व्यंजनमय वर्णों को एकत्रित करके बने हुए व्यंजनमय वर्णसमूहों का अथवा शब्दों का वादन में प्रयोग होता है। उदा. तक, तिट, तिरकिट, त्रक, तकिट, कतिट, केके, तिरतिर इत्यादि।

वादन करते समय अलग उँगलियों से विविध बन्द तथा खुले नादों की निर्मिति के कारण तबले में नादविविधता का अनुभव होता है। स्वरमय तथा व्यंजनमय वर्णों के मिश्रण से यह नादविविधता सौंदर्यपूर्ण होती हैं। उदा. धातिरकिट, धाधातिट, धात्रक, धातिट, घिडनग, घिनतिट, धिकिट, धिरधिरकिटतक, धिनतक, गदिगन इत्यादि। इन वर्णसमूहों तथा शब्दों की युति द्वारा सुयोग्य निकास तथा ध्वनिसौंदर्य के अनुसार विविध शब्दसमूह निर्माण किए जाते हैं, जो तबले के विविध वादनप्रकारों में बजाए जाते हैं।

तबलावादन के लिए एक प्रतिकात्मक भाषा खुले-बन्दपन की दृष्टि से विकसित की गई है। बाजों का खुला-बन्दपन वाणी पर नहीं बल्कि निकास पर निर्भर है। खुले बाज का 'धा' एवं बन्द बाज का 'धा' वाणी के दृष्टिकोन से एक समान ही हैं। फर्क तो निकास में है। इसी कारण दोनों बाजों का 'धा' वर्ण वाणी की दृष्टि से समान होते हुए भी दो अलग प्रकारों से बजता हैं।

तबलावादन में प्रयुक्त वर्णों से खाली-भरी के बोल, वर्णसमूह अथवा शब्द, बोलपंक्तियाँ और इन बोलपंक्तियों से पेशकार, कायदे, रेले, गत, टुकड़े जैसे वादनप्रकार निर्माण हुए। स्वतंत्र

तबलावादन में वर्णों का विचारपूर्वक उपयोग, विविध वर्णसमूहों के अवगुंठन से असंख्य रचनाओं की निर्मिति एवं विशिष्ट वर्णों का विशिष्ट संकल्पना के लिए बडी खुबी से प्रयोग किया गया हैं।

१.२.६ वर्णों/पटाक्षरों से निर्मित रचनाएँ

वर्ण तथा पटाक्षरों से निर्मित रचनाएँ/बन्दिशें दो प्रकार की हैं - विस्तारक्षम रचना, पूर्वसंकल्पित रचना। पेशकार, कायदा, रेला, गतकायदा, लड़ी इत्यादि विस्तारक्षम रचनाएँ एवं गत, गतटुकडा, तिहाई, चक्रदार आदि पूर्वसंकल्पित रचनाएँ हैं। तबले के ध्वनिस्थान एवं उँगलियों के आघात तंत्र के अनुसार मूल वर्ण, वर्णों से अक्षर, अक्षरों से शब्द, शब्दसमूहों से वाक्यांश, वाक्यसमूहों से ये सभी रचनाओं तथा बन्दिशों की निर्मिति हुई।

तबले पर बजनेवाले प्रायः सभी बोलों का अन्तर्भाव पेशकार में होता हैं। इन सभी बोलों का प्रयोग प्रभावशाली फिर भी पेशकार की प्रकृति को संभालकर करना आवश्यक हैं। एक मात्रा में अनेक अक्षरों का प्रयोग करके लय बदल का आभास निर्माण होता है। पेशकार में एक ही बोल के अनेक रूप, दर्जे, वजन बजाए जाते हैं। पेशकार की शुरुआत साधारणतः 'धाऽक्ड', 'धिंऽक्ड' बोलों से होती है और अन्त 'धिंऽना', 'तिंऽना', इन स्वरमय बोलों से होता हैं। दिल्ली पेशकार 'धा' बोल से किनार पर और फर्रुखाबाद पेशकार 'धिं' बोल से लव अथवा स्याही पर तर्जनी के खुले आघात से शुरु होता है। पेशकार में धिंऽक्ड, धाऽक्ड, धाऽतित् घिडाऽन, त्रक, किटतक, तिंगतिना, तिरकिट, धागेन, तागेतिट, तागेत्रक, धिनधिनागिन आदि विविध बोलों का मुक्त प्रयोग होता हैं।

उदा. पेशकार

धि ऽक्ड धिं धा	तित् धा धीं ना	धा ति धा ति	धा धा तिं ना।
x			
ऽ धा ऽक्ड धा	धीं ना धा ति	धाऽ किट तक धीं	धा धा तिं ना।
२			
किट तक तिं ऽक्ड	तिं ता किट तक	तिंगतिनागिनतागे	त्रकतिंगतिनागिन।
०			
तक घिडा ऽन धा	धीं ना घिडा ऽन	धा धीं ना घिडा	ऽन धा धीं ना। धा
३			x

कायदे के मुख के प्रारम्भ का एवं अन्त का बोल स्वरमय होता हैं। खाली-भरी, खंड के अनुसार मुख के बोलों का ही क्रमशः विस्तार होता हैं। कायदे की रचना स्वर-व्यंजन के सुयोग्य संतुलनसहित एवं नियमबद्ध होती हैं। कायदा साधारणतः धाधाधिना, धिनागिना, धागेधिनागिना, धागेनाधिनागिना, दिंगदिनागिन जैसे क्रियापदों से पूर्ण होता है।

उदा. कायदा

धा गे ना धा	ऽतिर किट तक	धा गे ना तीं	ऽना किड नग।
x			
तिर किट तक धा	ऽधा तिर किट	धा गे ना तीं	ऽना किना।
२			
ता गे ना ता	ऽतिर किट तक	ता गे ना तीं	ऽना किड नग।
०			
तिर किट तक धा	ऽधा तिर किट	धा गे ना धीं	ऽना गिना। धा
३			x

रेले के बोलसमूह का पहला अक्षर स्वर एवं अंतिम अक्षर व्यंजन होता हैं। द्रुत लय में आसानी से बजाने योग्य बोल होते हैं। कम अक्षरों या शब्दों के प्रयोग से बोलों की निरन्तर पुनरावृत्ति होती है, इसलिए बोलविविधता मर्यादित होती है। बोलों का विस्तार लौट-पलट संकल्पना से किया जाता है। दो स्वरों के बीच अधिकाधिक व्यंजन होने के कारण रचना में एकसंघ शृंखला एवं रव निर्माण होती है। रेले में तिरकिट, धिरधिर, धिनगिन, नानागिन इस प्रकार के बोलों का उपयोग किया जाता है।

उदा. रेला

धा ऽ ति र	कि ट त क	ति र कि ट	त क धि र।
x			
धि र धि र	कि ट त क	ता ऽ ति र	कि ट त क।
२			
ता ऽ ति र	कि ट त क	ति र कि ट	त क धि र।
०			
धि र धि र	कि ट त क	धा ऽ ति र	कि ट त क। धा
३			x

गतकायदे में 'गत' के समान खुले जोरदार बोलों का उपयोग किया जाता है और इन बोलों की कायदे के समान रचना करके उनका विस्तार किया जाता है।

उदा. गतकायदा

धि न धि ना x	गि न धि न	धि ना गि न	धा धा गि न।
धा गे ना धा २	त्र क धि न	धा गे त्र क	ति ना गि ना।
ति न ति ना ०	कि न ति न	ति ना कि न	धा धा गि न।
धा गे ना धा ३	त्र क धि न	धा गे त्र क	धि ना गि ना। धा x

लड़ी का प्रथम अक्षर स्वर तथा अन्ताक्षर व्यंजन होता हैं। लड़ी में विशेषतः तिट, घिडनग बोलों का समावेश होता है।

उदा. लडी

घेघेतिटघेघेतिट x	गिनधिनधिनागिना	तागेतिटघेघेतिट	गिनधिनधिनागिना।
धिनधिनागिनतागे २	तिरकिटधिननाना	घेघेतिटगिनधिन	नानागिनताकेतिट।
केकेतिटकेकेतिट ०	किनतिनतिनाकिना	ताकेतिटकेकेतिट	किनतिनतिनाकिना।
धिनधिनागिनतागे ३	तिरकिटधिननाना	घेघेतिटगिनधिन	नानागिनताकेतिट। धा x

गत में ज़्यादातर खुले जोरदार बोल होते हैं, लेकिन गत सम के पहले कमजोर बोल से पूर्ण होती है। ''गत रचनाओं में शब्द-अक्षरों का लयबद्ध संचलन हुआ करता है, उनकी पुनरावृत्ति होती है।''२०

उदा. दुधारी गत

धिनघिडाऽन x	धिनघिडाऽन	धागेनगधिन	धागेनगधिन।
धात्रकधिकिट २	धात्रकधिकिट	घिनकतींऽन	घिनकतींऽन।
नककिटतक ०	नककिटतक	धडऽन्नाकिटतक	धडऽन्नाकिटतक।
धाधाघिन ३	धाधाघिन	तिरकिटतकधिरकिटतक	तिरकिटतकधिरकिटतक। धा x

गतटुकड़े में गत जैसे जोरदार बोल एवं टुकड़े जैसी रचना होती हैं। गतटुकड़ा तिहाईयुक्त बोलों से सम पर आता है।

उदा. गतटुकडा

कऽत्तधिकिट x	कतगदिगन	धात्रकधिकिट	कतगदिगन।
नगनगनग २	नगतिरकिट	धात्रकधिकिट	कतगदिगन।
धा कत् ०	धा धात्रक	धिकिट कतग	दिगन धा।
कत् धा ३	धात्रकधिकिट	कतगदिगन	धा कत्। धा x

तिहाई में एक बोलसमूह दो समान विरामों सहित तीन बार बजकर सम पर आता है, जिसका अन्तिम अक्षर 'धा' होता है।

उदा. तिहाई ताल-रूपक

किडनगतिरकीट ०	तकताऽतिरकिट	धा किडनग।	
तिरकिटतकताऽ १	तिरकिट धा।	किडनगतिरकीट २	तकताऽतिरकिट। तीं ०

चक्रदार में तिहाईयुक्त बोलसमूह दो विरामों सहित तीन बार बजकर सम पर आता है।

उदा. चक्रदार ताल-रूपक

धात्रकधिकिट	कतगदिगन	धा धात्रक।	
०			
धिकिटकतग	दिगन धा।	धात्रकधिकिट	कतगदिगन।
१		२	
धाऽ	धाऽ	धा धात्रक।	
०			
धिकिटकतग	दिगन धा।	धात्रकधिकिट	कतगदिगन।
१		२	
धा धात्रक	धिकिटकतग	दिगन धा।	
०			
ऽधा	ऽधा।	धात्रकधिकिट	कतगदिगन।
१		२	
धा धात्रक	धिकिटकतग	दिगन धा।	
०			
धात्रकधिकिट	कतगदिगन।	धाऽ	धाऽ । तीं
१		२	०

संक्षेप में, पेशकार का स्वरूप, विविध दर्जे, लय एवं विभिन्न जाति के बोल; कायदों का खाली-भरीयुक्त नियमबद्ध विस्तार, स्वर-व्यंजन संतुलन सहित बोलरचना; रेले में नादों की एकसंघ शृंखला, रव तथा द्रुतलय सुलभ बोल; गतों की वादनप्रकार विषयक खुली भाषा, सम से पहले कमजोर बोलों से समाप्त होना एवं बोलरचनाओं की विशेषतानुसार गतों के विविध प्रकार; गतटुकडों के विविध लयबंध तथा वजनयुक्त बोल; एक बोलसमूह के तीन बार पुनरावृत्ति से बनी तिहाई और तिहाईयुक्त बोलसमूह के तीन बार पुनरावृत्ति से रचायी गई चक्रदार ये सभी रचनाएँ उचित वर्णसमूहों द्वारा निर्माण हुई हैं।

१.३ तबले की भाषा

भाषा अथवा साहित्य का सबसे महत्त्वपूर्ण अलंकार, अर्थालंकार होता है। अर्थालंकार का उपयोग करने के लिए प्रगत मानवी भाषा आवश्यक है। इसी कारण तबले में अर्थालंकार का उपयोग नामुमकीन है। तबला वाद्य विकसित भाषा से समृद्ध अवनद्ध वाद्य है। तबले की स्वतंत्र भाषा है। यह भाषा अनेकानेक स्थित्यंतरों के बाद बन गई है, इसलिए अत्यन्त प्रगल्भ एवं समृद्ध भाषा है। ''दायाँ-बायाँ में अन्तर्भूत नादों पर आधारित ध्वन्यनुगामी (Onomatopoeic) भाषा है।''२१ (हिन्दी अनुवाद) बाज़, घरानें एवं तबले की विविध संकल्पनाओं से तबले की भाषा व्यापक हुई है। यह भाषा अर्थवाही नहीं है, किन्तु यह प्रतिकात्मक भाषा है। इस भाषा में शब्दों को अर्थ नहीं होता है, फिर भी इस वाद्य से निर्माण होनेवाले नादध्वनि विविध भाव प्रकट करते हैं। इस भाषा से चेतना तथा विशिष्ट अनुभूति प्राप्त होती है। शोधकर्ती ने पहले उल्लेख किया है कि तबले की भाषा में अ, आ, इ, ई, ए ये पाँच स्वर एवं क्,ग्, घ्, त्, द्, ध्, न्, ट्, ड्, र् ये दस व्यंजन हैं। इन वर्णों के प्रयोग से ही पेशकार, कायदा, रेला, गत, टुकड़ा, चक्रदार इन बन्दिशों की समृद्ध भाषा का तबलावादन में प्रयोग हुआ। द्रुत लय में बोलों के उच्चारण में प्रतिरोध न हो, अर्थात् द्रुत लय में बोलों की पढन्त आसान हो, इसी सोच से तबले की भाषा में ओष्ठ्य व्यंजन और उकारान्त स्वरों को छोड देना उचित समझा गया। फिर भी जो घरानें पखावज़ एवं नृत्य से प्रभावित हैं, उन घरानों की बोली में उकारान्त स्वर का प्रयोग किया जाता है। उदा. धुमकिटतक, थूं किटतक

१.३.१ व्यवहारिक तथा अर्थपूर्ण भाषा नहीं

व्यवहारिक भाषा की तुलना में तबले की भाषा के स्वर-व्यंजन में भिन्नता हैं, अर्थात् स्वर-व्यंजन निर्मिति के निकष भी भिन्न हैं। उदा. तबले की भाषा में 'धा', 'धिं' स्वर वर्ण हैं, लेकिन व्यवहारिक भाषा में 'ध्' व्यंजन वर्ण है। तबले में गूँजयुक्त ध्वनि पैदा करने से 'ना', 'धा', 'धिं', 'घे', 'गे' जैसे स्वर वर्ण उत्पन्न होते हैं और 'तिट', 'तिरकिट', 'त्रक', 'धिर' जैसे बन्द आघात के बोल व्यंजन हैं। व्यवहारिक भाषा में 'अ' से 'अ:' तक स्वर वर्ण बाकी सब व्यंजन हैं। तबले की

भाषा में व्यवहारिक भाषा से चुने हुए उपरनिर्दिष्ट पाँच स्वर और दस व्यंजनों का उपयोग किया गया हैं। तबले की भाषा अर्थपूर्ण नहीं है तथा व्यवहारिक अर्थ की भाषा नहीं है। तबले के विभिन्न ध्वनिस्थानों से निकलनेवाले खुले तथा बन्द बोलभाव एक स्वयंभू ध्वनिभाषा निर्माण करते हैं। इस भाषा का अविष्कार आघात स्वरूप होता है, जिन्हें हम निकास कहते हैं। इन्ही निकासों से तालभाषा की निर्मिति हुई। इस तालभाषा को प्रतिभासंपन्न कलाकारों ने सुंदर काव्यात्मक रूप प्रदान किया। ''तबले पर बजनेवाली विकसित और समृद्ध भाषा से काव्य की जो अनुभूति मिलती है, वह सब शब्दालंकार का करतब होता है; क्योंकि तबले से अर्थालंकार की अभिव्यक्ति सम्भवनीय नहीं होती है। लेकिन समृद्ध भाषा से बनी हुई रचना से श्रोताओं को उच्च प्रकार का कलात्मक आनंद और अर्थपूर्ण सौंदर्य का आस्वाद जरूर मिलता हैं।''२२

१.३.२ रचनाओं में प्रयुक्त विशिष्ट शब्द अथवा भाषा

तबलावादन में प्रयुक्त हर एक रचना का एक ढाँचा होता है। प्रत्येक रचना में विशिष्ट भाषा एवं विशिष्ट शब्दों का प्रयोग किया गया है। पेशकार, कायदा, रेला, गतकायदा, लड़ी, लग्गी इन रचनाओं की भाषा में एक विचार-सूत्र का विस्तार किया जाता है। विस्तारक्षमता इन रचनाओं का प्राण है।

पेशकार धीमी लय से शुरू होता है। इस रचना में सुनिश्चित शब्दप्रयोग नहीं होते हैं और पेशकार का विस्तार उत्स्फूर्त रीति से होता है। इसमें स्वरमय शब्दों का काफी प्रयोग किया जाता है। दिल्ली घराने के पेशकार में एक एक शब्द को प्रधान शब्द बनाकर पलटों से विस्तारित किया जाता है। इस विस्तार में धीमी, डेढ, दुगुनी लय का प्रयोग कर सम या काल पर मूल धीमी लय में जाने के लिए अनुरूप शब्दप्रयोग किया जाता है। इस घराने के पेशकार में धाकिट, धाऽक्ड, धातित्, तिरकिट, तित् धा, धागे, धागेना, धिना आदि बोलसमूहों का उपयोग होता हैं।

उदा. दिल्ली पेशकार

धाऽक्ड धा तिर	किट धा तित् धा	तिर किट धा तित्	धा धा तिं ना।
x			
किट धा तिर किट	धा तिर किट धा	तित् धा धा तित्	धा धा तिं ना।
२			
ताऽक्ड ता तिर	किट ता तित् ता	तिर किट ता तित्	ता ता तिं ना।
०			
किट धा तिर किट	धा तिर किट धा	तित् धा धा तित्	धा धा धिं ना। धा
३			x

फर्रुखाबाद के पेशकार में धिऽक्ड, धाधींना, धातीत्, धाधाधिंना, धाधातिंना, त्रक, घिडान्, किटतक, तिंगतिनागिन आदि शब्दसमूहों का प्रयोग होता है।

उदा. फर्रुखाबाद का सर्वश्रुत पेशकार

धि ऽक्ड धिं धा	ऽ धा धीं ना	धा तीत् धा तीत्	धा धा तीं ना।
x			
तक घिडा ऽन धा	तीत् धा धीं ना	धा त्रक धा तीत्	धा धा तीं ना।
२			
ऽत्रकतींता	तीत् तातींना	तातीत् तातीत्	ता ता तू ना।
०			
ऽधातीत्धा	तूना धातीत्	धा तू ना धा	तीत् धा तू ना। धा
३			x

पंजाब घराने का पेशकार विविध लयबंधों के बोल तथा सौंदर्यपूर्ण विस्तार से पेश होता है।

अजराड़ा घराने के उस्ताद हबीबुद्दीन खाँसाहब, पेशकार को मूल धीमी लय में कम समय तक बजाते थे और शीघ्र ही उसे द्रुत लय में पेशकार-कायदे के रूप में विस्तारक्षम रचना के अनुसार बहुत खूबसूरती से बजाते थे।

लखनऊ घराने के पेशकार में 'धींधींधाधा धींधागधा' ऐसे शब्दसमूहों का प्रयोग होता है। इसमें बायें के घुमार के साथ गमकयुक्त बोल बजाना महत्त्वपूर्ण होता है।

‘‘उदा. उ. अकबर हुसेन खाँसाहब (उ. बल्लू खाँ) के मतानुसार नीचे लिखा हुआ पेशकार लखनऊ घराने का मूल पेशकार है।

तिरकिट धिंधा x	धींधागधा	धींधींधाधा	धींधागधा।
धींधागधा २	धींधागधा	धींधींधाधा	धींधागधा।
तिरकिटतींता ०	तींताकता	तींतींताता	तींताकता।
धींधागधा ३	धींधागधा	धींधींधाधा	धींधागधा। धा’’२३ x

बनारस घरानें में उठान के बाद पेशकार प्रस्तुत किया जाता है। इसमें धीमी लय में त्रिताल के ठेके की खूबसूरती से बढ़त की जाती है। ‘‘इस प्रस्तार-क्रिया में सुंदर मंगल घंटा-नाद जैसी ध्वनि निर्माण करनेवाली चाट का प्रयोग तथा उसके साथ ही लोचदार, गमकयुक्त बायें का प्रयोग भी बहुत महत्त्वपूर्ण होता है’’२४

कायदे की रचना खाली-भरी, खण्ड के अनुसार विस्तारक्षम बोलसमूहों से इसी प्रकार होती है, जिससे विशेष शब्दों की पुनरावृत्ति करना आसान हो। कायदे में स्वरमय एवं व्यंजनमय शब्दों का संयोग होता है और प्रथम एवं अन्तिम अक्षर स्वर होता है। मुख के बोलों का नियमबद्ध विस्तार किया जाता है। इसमें तीट, त्रक, तिरकिट, घिडनग, धाधा-ताता, धिनागिना-तिनागिना, धागेन-तागेन, धागेदिनागिना-तागेतिनागिना इत्यादि विभिन्न शब्दों का प्रयोग होता है।

उदा. झपताल कायदा

धातीटधा x	धातीटधा	।	तीटधाधा २	तीटधागे	तिनागिना।
तातीटता ०	तातीटता	।	तीटधाधा ३	तीटधागे	धिनागिना। धीं x

त्रिताल कायदा

धाऽत्रक x	धिनागिना	धागेत्रक	धिनागिना।
धागेनधा २	त्रकधिन	धागेत्रक	तूनागिना।
तागेतिट ०	तागेतिट	तागेत्रक	तूनागिना।
धागेनधा ३	त्रकधिन	धागेत्रक	धिनागिना। धा x

मर्यादित और गतिमानता निर्माण करनेवाले शब्दसमूहों से रेले की रचना होती है। इस रचना के बोलसमूह का प्रथम अक्षर स्वर और अन्तिम अक्षर व्यंजन होता है। दो स्वरों के बीच अधिकाधिक व्यंजनों के कारण द्रुत लय में रवनिर्मिति करनेवाला यह रचनाप्रकार है। रेले की भाषा तिरकिट, तिंगनग, धीरधीर, किटतक, धिनगिन, नानगिन, धा तिरकिटतक जैसे शब्दसमूहों से जुड़ी होती है।

उदा. त्रिताल रेला

धा ऽ ति र x	कि ट त क	धी र धी र	कि ट त क।
धा ऽ ति र २	घि ड न ग	तू ऽ ना ऽ	कि ट त क।
ता ऽ ति र ०	कि ट त क	ती र ती र	कि ट त क।
धा ऽ ति र ३	घि ड न ग	दि ऽ ना ऽ	घि ट त क। धा x

गतकायदे की रचना में भाषा का प्रयोग गत रचना के समान ऐसे जोरदार खुले बोलसमूहों से किया जाता है, जिन बोलों का कायदे की तरह विस्तार हो सकें।

उदा. त्रिताल गतकायदा रचना – पं. आमोद दंडगे

धाऽघिडनगतक	घिडाऽनधागेतीट	कतगदिगनधागे	तिटकतगदिगन।
x			
कतगदिगनधाऽ	घिडाऽनधागेतीट	कतगदिगनधागे	तिटकतकतिकन।
२			
ताऽकिडनगतक	किडाऽनताकेतीट	कतकतिकनताके	तिटकतकतिकन।
०			
कतगदिगनधाऽ	घिडाऽनधागेतिट	कतगदिगनधागे	तिटकतगदिगन। धा
३			x

लड़ी ऐसे शब्दसमूहों से बाँधी होती है कि इस रचना का आरम्भ और अन्त एक दूसरे में एकरूप होकर सम पहचानना कठिन होता है।

उदा . त्रिताल लड़ी दिल्ली घराना

घिडनग	तिटघिड	नगतिट	घिडनग।
x			
नगतिट	घिडनग	तिटघिड	नगतिट।
२			
किडनग	तिटकिड	नगतिट	किडनग।
०			
नगतिट	घिडनग	तिटघिड	नगतिट। धा
३			x

लग्गी शृंगारिक तथा चंचल प्रकृति की बोलरचना है।

उदा. लग्गी ताल केरवा

धाधीं नातीं	नातीं नाडा	।	तातीं नातीं	नाधीं धाडा	। धा
x			०		x

गत, गतटुकड़ा, मुखड़ा, मोहरा, परन, तिहाई, चक्रदार इन पूर्वसंकल्पित रचनाओं का विस्तार नहीं किया जाता है।

गत में रचनाकारों के लय तथा चलन का अनुभव तबले के सुसूत्र बोलोंद्वारा व्यक्त होता है। ये रचनाएँ सर्वसमावेशक हैं। इन बन्दिशों में सभी प्रकार के बोलों का प्रयोग हो सकता है। इन पर कोई निर्बंध नहीं है। प्रत्येक रचनाओं के लिए प्रयुक्त भाषा एवं शब्दों का उपयोग गत जैसी बन्दिशों में किया जा सकता है। इनमें ऐसा बन्धन नहीं है कि रचना के अन्त का बोल स्वर हो, व्यंजन हो। अन्त में खुले अथवा बन्द कोई भी बोलों से ये रचनाएँ संपन्न हो सकती हैं।

उदा. ''मंझदार गत ताल - त्रिताल

धगऽत्त	किटधागे	तिटघिडा	ऽनकत्।
x			
धात्रकधिकिट	केत्रकधिकिट	गद्दीं	ऽनकत्।
२			
क्डधिंनान्	धधेत्तान	केत्रकधिकिट	तिटघिडाऽन्।
०			
धडऽन्ना	किटतकधाघिड	नगधिनघिडनग	धेत्ताघिडनग। धा'' २५
३			x

इस मंझदार गत में रचाएँ गए बोल आवाज, गति एवं लयबन्ध के निर्देशक हैं।

गतटुकड़े में गत जैसे भारी, कठिन एवं जोरदार बोलों का समावेश होता है। गतटुकड़े के अन्त में तिहाई होती है।

उदा. गतटुकड़ा ताल – त्रिताल

धागेतिट	तागेतिट	क्डधाऽक्ड	धाऽक्डधा।
x			
दिंऽदिंऽ	धानानाना	कतिटधा	ऽकऽत्त।
२			
धाऽकत	धाऽकति	टधाऽक	ऽत्तधाऽ।
०			
कतधाऽ	कतिटधा	ऽकऽत्त	धाऽकत। धा
३			x

सम पर वजनदार रीति से आने के लिए सम के पूर्व बजाएँ जानेवाली छोटी रचना 'मोहरा' कहलाती है। मुखड़े की तुलना में मोहरा नाजूक बोलों से बनता है।

उदा. मोहरा

ना	धीं	धीं	ना ।	
x				
ना	धीं	धीं	ना ।	
२				
तिरकिट	तकतिर	किटतक	ताऽतिर ।	
०				
किटतक	तिरकिट	तकताऽ	तिरकिट ।	धा
३				x

सम के पूर्व बजाएँ जानेवाली छोटी रचना जो जोरदार वजन से सम पर आती है, उसे मुखड़ा कहा जाता है। मोहरे की तुलना में मुखड़ा जोरदार बोलों से बनता है। मुखड़ा तिहाईयुक्त हो सकता है।

उदा. मुखड़ा

धाऽ	तींना	किडनग	तींना ।	
x				
किडनग	तिरकिट	तकताऽ	तिरकिट ।	
२				
धाऽऽऽ	तिरकिट	तकताऽ	तिरकिट ।	
०				
धाऽऽऽ	तिरकिट	तकताऽ	तिरकिट ।	धा
३				x

परन में पखावज़ जैसे खुले बोल होते है। परन में धागेतिट, तागेतिट, क्डधातीट, धुमकिट आदि वजनदार बोल होते है।

उदा. परन   ताल – त्रिताल

रचना – उ. मोहम्मद खाँ (लखनऊ)

धेत् धेत्	धिटधिट	क्रधातिट	धागेतिट।
x			
क्रधातिट	धागेतीट	धागेनधा	गदिगन।
२			
नगतिट	क्रधातिट	क्रधेऽधि	किटक्रधे।
०			
ऽधिकिट	कताकता	घिंऽतडा	ऽनधित्ऽ।
३			
ताऽत्रक	धेऽत्ताऽ	क्रधेऽत्	धेत् धेत्।
x			
धडऽन्न	कत् धिरधिर	किटतकतकिट	धाऽतकिट।
२			
धा	कत् धिरधिर	किटतकतकिट	धाऽतकिट।
०			
धा	कत् धिरधिर	किटतकतकिट	धाऽतकिट। धा
३			x

अन्ताक्षर 'धा' होनेवाला एक बोलसमूह दो विरामों सहित तीन बार बजता है, तो ऐसी रचना को 'तिहाई' संबोधन है।

उदा. तिहाई   ताल-झपताल

तिटकत	गदिगन	।	धा तीत्	धा तिट	कतगदि।	
x			२			
गन धा	तीत् धा	।	तिटकत	गदिगन	धा तीत्।	धीं
०			३			x

तिहाईयुक्त बोलसमूह दो विरामों के सहित तीन बार बजाया जाता है, ऐसी रचनाएँ चक्रदार कहलाती है।

उदा. चक्रदार ताल – त्रिताल

धिरधिरकिटतक	तकिटधा	धिरधिरकिटतक	तकिटधा।
x			
तकिटधा	धींना	धींधीं	नातीं।
२			
नाधीं	धींना	धाधीं	नाधीं।
०			
धींना	तींना	धींधी	नाधा।
३			
धींना	धींधीं	नातीं	नाधीं।
x			
धींना	धा धिरधिर	किटतकतकिट	धा धिरधिर।
२			
किटतकतकिट	धा तकिट	धाधीं	नाधीं।
०			
धींना	तींना	धींधीं	नाधा।
३			
धींना	धींधी	नातीं	नाधीं।
x			
धींना	धाधीं	नाधीं	धींना।
२			
तींना	धींधी	नाधा	धिरधिरकिटतक।
०			
तकिटधा	धिरधिरकिटतक	तकिटधा	तकिटधा।
३			
धींना	धींधीं	नातीं	नाधीं।
x			
धींना	धाधीं	नाधीं	धींना।
२			
तींना	धींधी	नाधा	धींना।
०			
धींधीं	नातीं	नाधीं	धींना। धा
३			x

१.३.३. खाली-भरी अनुसार रचना

पेशकार, कायदा, रेला, लडी, गतकायदा ये रचनाएँ खाली-भरी अनुसार होती हैं। ताल को खाली होती है, जो वादनक्रिया से सिद्ध की जाती है। खाली सिद्ध करने की जिम्मेदारी ठेके पर है।

उदा. त्रिताल का ठेका

धा धिं धिं धा।	धा धिं धिं धा।	धा तिं तिं ता।	ता धिं धिं धा।
x	२	०	३

त्रिताल के इस ठेके में 'धा तिं तिं ता। ता धिं धिं धा।' इस खाली भाव के बारे में यह कह सकते है कि खाली विशिष्ट बिन्दु नहीं है, बल्कि परिसर है। ये एक क्षण का बदल नहीं है, संक्रमण है।

कुछ रचनाओं में खाली-भरी बजती है और कुछ रचनाएँ खाली-भरी अनुसार बजती हैं - ये दो भिन्न अर्थ के विधान हैं।

सामान्यतः कायदे खाली-भरी अनुसार बजते हैं। भरी में जिन अक्षरों का उपयोग किया हैं, वही अक्षर कंठ्य व्यंजनों (बायाँ के 'ग', 'घ') को छोड़कर खाली में बजाए जाते हैं। 'धातीट' शब्द खाली में 'तातीट' ऐसा होता है। इसी तरह कायदे खाली-भरी अनुसार बजते हैं। अजराड़ा घराने के कायदों में खाली की जगह भरी के शब्दों के बदले 'तिंगतिनागिन तागेतिरकिट' अथवा 'घिनक तीन्न तागे तिरकिट' ऐसे शब्दों का प्रयोग होता है। ऐसे कायदे खाली-भरी अनुसार नहीं है, बल्कि खाली-भरी दर्शक हैं।

गतों में दोनों हैं अर्थात् कुछ गतों में खाली-भरी बजती है और कई गतें खाली-भरी अनुसार भी बजती हैं। गतों में खाली-भरी दिखाई देना आवश्यक है। उन्हीं अक्षरों का होना जरूरी नहीं है।

उदा. उ. हाजी विलायत अली खाँसाहब की रचना

ताधा	घिडनगतक्	घिडनगतक धा	घिडनगतक् ।
x			
घिडनगतकधाऽ	ऽड्धाऽघिडनग	तकधाऽऽड्धाऽ	दिंगदिना ।
२			
किटतकतिंग	तिंनाकिटतक	तिरकिटतकताऽ	कत्तिंकिडनग ।
०			
घिडनगतकधाऽ	ऽड्धाऽघिडनग	तकधाऽऽड्धाऽ	दिंगदिना । धा
३			x

इस गत में 'किटतकतिंग तिंनाकिटतक तिरकिटतकताऽ कत्तिंकिडनग' इस वाक्य में खाली दिखाई देती है। इधर खाली में 'ताता किडनगतक् किडनगतकताऽ किडनगतक्' ऐसा नहीं किया है।

हाजीसाहब की और एक गत में खाली-भरी का स्वरूप

धीरधीर	किटधाऽ	तिरकिट	धींना ।
x			
किटधाऽ	किटधाऽ	तिरकिट	धींना ।
२			
किटधाऽ	तिरकिट	धींना	किटतक ।
०			
तीरतीर	तीरधीर	धीरधीर	धीरधीर । धा
३			x

चतस्त्र जाति की इस गत में तेरह से सोलह मात्रा तक 'तीरतीर तीरधीर धीरधीर धीरधीर' याने 'ता धिं धिं धा' की तरह खाली-भरी का संबंध है।

खाली-भरी अनुसार बजनेवाली गत   उ. अहमदजान थिरकवाँ खाँसाहब के वादन से

धिंक्डधिंधा	ऽत्रकधिंधा	घिडनगतिरकिट	गदिगननागेतिट ।
x			
घिडानधिनगिन	धागेत्रकतिनाकिन	धिनगिनधागेधिन	गिनधागेधिनगिन ।
२			
तिक्डतिंता	ऽत्रकतिंता	किडनगतिरकिट	कतिकननागेतिट ।
०			
घिडानधिनगिन	धागेत्रकतिनाकिन	धिनगिनधागेधिन	गिनधागेधिनगिन । धा
३			x

यह गत ठाय-दून में बजती है एवं विस्तारक्षम रचनाओं की तरह खाली-भरी अनुसार बजती है। चतस्त्र जाति की इस सुंदर रचना में ५ से ८ एवं १३ से १६ मात्रा के बोलसमूह चमत्कृतिपूर्ण हैं। इनमें बायाँ के घुमार तथा मींडकाम का विशेष महत्त्व होने के कारण अधिक मधुरता का अनुभव होता है।

गत एकमेव ऐसी रचना है, जो अपने वैशिष्ट्यों के कारण तबले के हर एक बन्दिश से जुड़ी हुई है । गत के सिवा कोई भी ऐसी पूर्वसंकल्पित रचना नहीं हैं, जो हर एक विस्तारक्षम रचनाओं से संबंध दर्शाती है। विस्तारक्षम रचनाओं का मुख्य तत्त्व है खाली-भरी, जो गतों को भी लागू होता है ।

१.३.४ निहित सौंदर्य

''रचनाकार जब एकाध बंदिश बनाता है तब यद्यपि वह तबले के उत्तमोत्तम अक्षरों से बनाई गई हो, फिर भी वे शब्दाक्षर एक निश्चित आकार की गढ़न में निबद्ध किए होते हैं। अगर हम रचनाकार द्वारा निर्मित इन गढ़नों का सूक्ष्म रूप में अध्ययन करें तो हमें उसमें निहित सौंदर्य के दर्शन हो सकते हैं।''२६

विभिन्न आकार के तथा अलग गति के योजनापूर्वक शब्दप्रयोगों से रचनाओं में सौंदर्यनिर्मिति होती है। अलंकारों का अप्रत्यक्ष प्रयोग तबले की रचनाओं में होता है। रचना-काव्य में एक ही स्वर, व्यंजन अथवा शब्द अधिक बार आकर अनुप्रास अलंकार का अनुभव होता है । उदा. 'धातीट धातीट धाधा' इसमें 'धा' अक्षर की पुनरावृत्ति होती है, अर्थात् हर एक शब्द के आरंभ में 'धा' अक्षर आकर अनुप्रास प्रतीत होता है। 'धीं धागेन धा धागेन धातिरकिट धागेन' इसमें 'धागेन' शब्द पुनरावृत्त होता है। एक ही बोलसमूह अलग तरीके से विभाजित कर दिया तो विभिन्न भावसौंदर्य से श्लेष अलंकार प्रतीत होता है। व्यवहारिक उदाहरण - 'औषध न लगे मजला' और 'औषध नल गे मजला' तबले के बोलों का उदाहरण - 'धातीट धातीट धाधा' और 'धातीटधा तीटधाधा', 'धातीत् धागेन धा तिरकिट' और 'धातीत् धागेनधा तिरकिट' दोनों द्व्यर्थी उदाहरण हैं ।

दोनों उदाहरणों में एक ही बोलसमूह काव्यरचनानुसार और मात्रानुसार विभाजित होने से भिन्नभिन्न रचनासौंदर्य का अनुभव (Feel) होता है। तबले की रचनाओं में यमक होता है।

उदा. गत   रचना - उ. हबीबुद्दीन खाँसाहब   डॉ. अजय अष्टपुत्रेजी से प्राप्त

धागत्तकिट x	धागेतिरकिट	तकधिनतक	तिटकताऽन।	
तिटकताऽन २	नागेतिरकिट	तकधिनतक	तिटकताऽन।	
तकतकतक ०	तिटकताऽन	तकधिनतक	तिटकताऽन।	
धागत्तकिट ३	धागेतिरकिट	तकधिनतक	तिटकताऽन।	धा x

इस गत में हर विभाग के अन्त में 'ऽन' यह एकाक्षरी यमक मिलता है।

चार अक्षरी यमक का उदाहरण - 'धाऽ घिडनग धीरधीरधीर घिडनग धीरधीर घिडनग दिना घिडनग' इस बोलसमूह में 'घिडनग' बोल की पुनरावृत्ति से चार अक्षरी यमक मिलता है। छन्द पर आधारित अनेक ताल रचनाओं से भी सुंदर काव्यानुभूति मिलती है।

उदा. 'खिलत कमल खिल जात कमल खिल गये कमल कुछ खिलतना खिल गये' इस छन्द पर आधारित तबले की रचना - 'तिरकिटतकताऽन धिटधिटकताऽन धागेतिटक्डधाऽन धागेदिंगननाऽन'

उचित काव्यमय भाषा में बाँधी हुई जातिबद्ध रचना बहुत सौंदर्यपूर्ण और प्रभावी होती है। रचनाओं का असली सौंदर्य उनमें प्रयुक्त भाषा एवं उनके कलात्मक प्रस्तुतिकरण में निहित रहता है। 'अलंकरोति इति अलंकारः।' अलग अलग आकृतिबंधों के अलंकारों से कलाकार अपनी अभिव्यक्ति प्रस्तुत करता है। शब्दोच्चारों से तथा उनसे निर्मित नादों से बनी हुई रचनाकृति से रचनाओं की लयबद्धता प्रतीत होती है। जातिनुरूप अच्छी तरह से शब्दप्रयोग की हुई रचना से आनंद मिलता है। रचना में ताल, ठेका, खंड, खाली-भरी का प्रयोग और छंदबद्ध, लयबद्ध, अनुप्रास तथा अनुस्वारयुक्त शब्दों के कलात्मक उपयोग से रचना काव्यमय बन जाती है।

प्रथम अध्याय में तबले का उद्गम, विकास, तबले के वर्ण, वर्णों के प्रकार, वर्णों की निकास, वर्णों की उपादेयता, वर्णों से निर्मित रचनाएँ, नादविविधता एवं समृद्ध भाषा इन घटकों को उजागर करने का एक कष्टसाध्य प्रयास शोधकर्ता द्वारा किया गया है।

पाद-टिप्पणियाँ

१ पं. निखिल घोष; संगीत तबला अंक; प्रकाशक - संगीत कार्यालय हाथरस उ. प्र.; पृष्ठ क्र. २०

२ पं. अरविंद मुळगांवकर; तबला; प्रकाशक - पॉप्युलर प्रकाशन मुंबई; ISBN-978-81-7185-526-1; पृष्ठ क्र. २३-२४

३ डॉ. आबान मिस्त्री; पखावज और तबला के घरानें एवं परम्परायें; प्रकाशक - स्वर साधना समिति मुम्बई; पृष्ठ क्र. १०९

४ डॉ. आबान मिस्त्री; पखावज और तबला के घरानें एवं परम्परायें; प्रकाशक - स्वर साधना समिति मुम्बई; पृष्ठ क्र. ११५

५ पं. प्रदीपकुमार रावत; संगीत तबला अंक; प्रकाशक - संगीत कार्यालय हाथरस उ. प्र.; पृष्ठ क्र. ५९

६ पं. आमोद दंडगे; सर्वांगीण तबला; प्रकाशक - भैरव प्रकाशन कोल्हापूर; पृष्ठ क्र. ५१

७ डॉ. चिश्ती एस. आर.; तबला संचयन; प्रकाशक - कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्युटर्स नई दिल्ली; पृष्ठ क्र. ३९-४०

८ डॉ. चिश्ती एस. आर.; तबला संचयन; प्रकाशक - कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्युटर्स नई दिल्ली; पृष्ठ क्र. ४३

९ पं. सुधीर माईणकर; तबला-वादन कला और शास्त्र; प्रकाशक - अ. भा. गांधर्व महाविद्यालय मंडल मिरज; पृष्ठ क्र. ५४

१० डॉ. आबान मिस्त्री; पखावज और तबला के घरानें एवं परम्परायें; प्रकाशक - स्वर साधना समिति मुम्बई; पृष्ठ क्र. १२७

११ प्रो. भगवत शरण शर्मा; ताल शास्त्र; प्रकाशक - पं. रवि शंकर शर्मा; पृष्ठ क्र. १०

१२ आचार्य गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव; ताल परिचय ३; प्रकाशक - रुबी प्रकाशन इलाहाबाद ; पृष्ठ क्र. ७०

१३ आचार्य गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव; ताल परिचय ३; प्रकाशक - रुबी प्रकाशन इलाहाबाद ; पृष्ठ क्र. ९०

१४ पं. अरविंद मुळगांवकर; तबला; प्रकाशक - पॉप्युलर प्रकाशन मुंबई; ISBN-978-81-7185-526-1; पृष्ठ क्र. ८७

१५ आचार्य गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव; ताल परिचय ३; प्रकाशक - रुबी प्रकाशन इलाहाबाद ; पृष्ठ क्र. २४

१६ डॉ. चिश्ती एस. आर.; तबला संचयन; प्रकाशक - कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्युटर्स नई दिल्ली; पृष्ठ क्र. ४१

१७ पं. आमोद दंडगे; पदव्युत्तर तबला; प्रकाशक - भैरव प्रकाशन कोल्हापूर; पृष्ठ क्र. १५४

१८ पं. सुधीर माईणकर; तबला-वादन कला और शास्त्र; प्रकाशक - अ. भा. गांधर्व महाविद्यालय मंडल मिरज; पृष्ठ क्र. १९८

१९ डॉ. आबान मिस्त्री; पखावज और तबला के घरानें एवं परम्परायें; प्रकाशक - स्वर साधना समिति मुम्बई; पृष्ठ क्र. १२७

२० पं. सुधीर माईणकर; तबला-वादन कला और शास्त्र; प्रकाशक - अ. भा. गांधर्व महाविद्यालय मंडल मिरज; पृष्ठ क्र. ६५

२१ पं. अरविंद मुळगांवकर; तबला; प्रकाशक - पॉप्युलर प्रकाशन मुंबई; ISBN-978-81-7185-526-1; पृष्ठ क्र. ८४

२२ पं. सुधीर माईणकर; तबला-वादन कला और शास्त्र; प्रकाशक - अ. भा. गांधर्व महाविद्यालय मंडल मिरज; पृष्ठ क्र. १८५

२३ पं.विजय शंकर मिश्रा; TABLA Rare Compositions of The Great Masters; प्रकाशक - कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्युटर्स नई दिल्ली; पृष्ठ क्र. ९

२४ पं. सुधीर माईणकर; तबला-वादन कला और शास्त्र; प्रकाशक - अ. भा. गांधर्व महाविद्यालय मंडल मिरज ; पृष्ठ क्र. ११६

२५ पं. अरविंद मुळगांवकर; तबला; प्रकाशक - पॉप्युलर प्रकाशन मुंबई; ISBN-978-81-7185-526-1; पृष्ठ क्र. १६१

२६ पं. सुधीर माईणकर; तबला-वादन कला और शास्त्र; प्रकाशक - अ. भा. गांधर्व महाविद्यालय मंडल मिरज ; पृष्ठ क्र. १९६